ISSN-2249-1597
वर्ष 6, अंक-1, पृ. संख्या 75-80

प्रगतिवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि और निराला की काव्य संवेदना

*पूनम सिंह

प्रगतिवाद कविता का जनपक्ष है। ऐसा नहीं है इससे पहले जनपक्षधरता को लेकर साहित्य नहीं रचा गया। 'तुलसीदास' कहते हैं-

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

साहित्य हमेशा से मानवता का समर्थक रहा है, किन्तु देश काल परिस्थितियों के अनुसार साहित्य कभी-कभी अपना स्तर देता है और सिर्फ दरबारी बनकर रह जाता है। यही बात रीतिकाल पर लागू होती है जहां एक कवि लिखता है कि-

आगे को जो कवि रीझिहैं तौ कविताई नहीं राधिका कन्हाई सुमिरन को बहाने हो।

फिर भी साहित्य की अन्तर्धारा सदैव लोक मंगल की भावना को आत्मसात किये रहती है और गरीबों, शोषितों, पीड़ितों की कराह सुनकर उठती है। आधुनिक काल में कविता अपने मानवीय पक्ष को लेकर तब और सक्रिय हो उठी जब उसे नये विचारों का संस्पर्श मिला। धार्मिक बाह्याडम्बर, सामाजिक कुप्रथाओं एवं सामंती व्यवस्था के प्रति कवियों का विद्रोह हिन्दी कविता में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक से दिखाई पड़ता है। परतंत्र भारत में दुहरी मार झेल रही जनता की आह तत्कालीन कवियों के अन्तस को झकझोरती है और उन्हें अपने दायित्व के प्रति सजग करती है। जमींदारों एवं हकीमों के अत्याचारों से पीड़ित शोषित जनता के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए तत्कालीन कवियों ने आज जनमानस की व्यथा कथा को साहित्य में उभारा। जनता के दर्द को अभिव्यक्त करते हुए 'दिनकर' लिखते हैं-

"श्वानों को मिला दूध भात,/भूखे बालक चिल्लाते हैं।
माँ की गोदी में ठिठुर ठिठुर,/जाड़े की रात बिताते हैं।"

दरअसल प्रगतिवाद समाज की विद्रपताओं को खत्मकर एक स्वस्थ समाज की स्थापना पर बल देता है। वह ऐसी व्यवस्था को तोड़ देने का आकांक्षी है जिसमें धनाढ्य वर्ग गरीबों का शोषण करता है। प्रगतिवादी कविता छायावाद के वायव्य लोक को तोड़कर यथार्थ की ओर उन्नमुख कराती है। उसका फलक बहुत व्यापक है। यहाँ साहित्य व्यष्टि से उठकर समष्टि का रूप धारण करता है और विशाल जनमानस की आकांक्षाओं को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इसी आम जनमानस की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए 'निराला' लिखते हैं कि-

"चाट रहे वे जूठी पत्तल कभी सड़क पर खड़े हुए।
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए।।"[1]

दरअसल 'निराला' ने समाज की जिस पीड़ा को अभिव्यक्त किया था वह समाज से आज भी पूर्णरूपेण खत्म नहीं हुई है आजादी के इतने सालों बाद भी बहुत हद तक हमारा सामना, उन्हीं समस्याओं से हो रहा है। तत्कालीन कवियों की रचनाएँ आज भी प्रासंगिक बनी हुई हैं क्योंकि हम लोकतंत्र होते हुए भी पूर्णरूपेण शोषण मुक्त समाज की स्थापना करने में सफल नहीं रहे हैं। 'केदारनाथ अग्रवाल' समाज की इसी विषमता पर चोट करते हुए लिखते हैं कि-

---

*शोध-छात्रा (हिन्दी विभाग), डॉ. शकुन्तला मिश्रा, राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)।

"घट धर्मशाला, अदालतें। विद्यालय वेश्यालय सारे,
होटल दफ्तर बूचड़खाने। मन्दिर मस्जिद घर सिनेमा,
श्रमजीवी की उस हड्डी से टिके हुए हैं,
जिस हड्डी को सभ्य आदमी के समाज ने टेढ़ा करके छोड़ दिया है।"

प्रगतिवादी कवि श्रम को बहुत सम्मान देते हैं एवं वह श्रमिकों को ही देवता मानते हैं। 'दिनकर' कहते हैं, देवता कहीं सड़कों पर गिट्टी तोड़ रहे। देवता मिलेंगे खेतों में खलिहानों में। यूँ तो जनता के प्रति सहानुभूति रखते हुए बहुत सारे कवि द्विवेदी युग से ही लेखन कर रहे थे किन्तु 'निराला' ने छायावाद में कविता करते हुए भी प्रगतिवादी कविताओं की बुनियाद रखी। 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविता श्रम सौन्दर्य की अद्‌भुत मिसाल है। 'निराला' ने काव्य को अभिजात्य से मुक्ति दिलाने का कार्य किया वह शोषित पीड़ित एवं दलित जनता को श्रमकत्व की भूमिका में रखते हैं। 'निराला' का काव्य उनके विकासशील व्यक्तित्व की प्रतिकृति है, जिसमें उनकी वैयक्तिकता और सामाजिकता का विद्रोह पक्ष प्रबल रहा है। एक प्रगतिशील कवि के रूप में उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है। उनके प्रगतिशील काव्य का आरम्भ 'रूपाभ' के प्रकाशन से होता है। हिन्दी कविता में मुक्त छन्द का प्रचलन सबसे पहले 'निराला' ने ही किया। इनकी काव्य संवेदन में मानवीय, राष्ट्रीय, सामाजिक पक्ष उभरकर सामने आते हैं। हिन्दी साहित्य में किसानों, मजदूरों, भिखारियों, विधवाओं आदि सर्वहारा का समर्थन तो सन् 1935 से आरम्भ होने वाला प्रगतिवाद लाया पर 'निराला' सन् 1928 में ही इस प्रकार की कविताओं की रचना कर चुके थे। उनकी प्रगतिशील कविताओं में समाज की अव्यवस्थाओं को चित्रित किया गया, जिसके आवरण में भारतीय जीवन को गति मिल रही थी। 'निराला' ने जातीय मतभेदों, भुखमरी, दरिद्रता, चारित्रिक दोष आदि को अपने काव्य में चित्रित किया है। हास्य व्यंग्यों के सहारे तीखे प्रहार भी किये हैं। इस प्रकार सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति में 'निराला' का काव्य समस्याओं का इतिहास बनकर भी समस्या समाधान के साधनों और परिणाम पर दृष्टि डालता है। 'निराला' ने जिस तरह का कठोर जीवन जिया उसमें 'मुक्ति की युक्ति' के आशांवादी भाव का तिरोहित हो जाना ही स्वाभाविक था। इसी कारण वे अनुभव करते हैं।-

"दीन का तो हीन ही यह वक्त है,
रंग करता भंग जो सुख-संग का।
भेद से कर छेद पीता रक्त है,
राज के सुख-साज-सौरभ अंग का।।"[2]

'निराला' का धर्म के प्रति आकर्षण उनके जीवन के वास्तविक उत्पीड़न का संकेत ही है। वे उसी धर्म की ओर आकर्षित थे, जिसमें उत्पीड़न से मुक्ति के रास्ते नहीं खुलते अगर वे वास्तविक और प्रगतिशील 'मुक्ति' के इस रास्ते पर सजग ढंग से आगे बढ़ जाते तो उन्हें 'आराधना' और 'अर्चना' की प्रार्थनाओं की ओर बढ़ने की जरूरत न पड़ती। निराला अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा अधिक विद्रोही रहे। वे तो अपने सम्पूर्ण जीवन काल में विद्रोह एवं संघर्ष ही करते रहे। 'अपरा' की कई कविताओं में यह प्रवृत्ति मुखर हुई है-

"धन गर्जन से भर दोवन
तक-तक पादप-पावन वन
गरजो, हे मन्द्र, वज्र-स्वर
थर्राय भूधर-भूधर।"

निराला की यथार्थावादी चेतना में चाहे जितनी भी कमजोरियाँ रही हो, लेकिन उसमें 'शक्ति' भी बहुत थी। यह शक्ति जब अपनी वास्तविकता पर उतरी थी तब निराला के अपने व्यक्तित्व की सारी आध्यात्मिकता को एक किनारे रख देती थी। 'आवाहन' कविता में 'श्यामा' अपनी सारी मिथकीयता को खोकर क्रांति की प्रतीक बनकर ही सामने आती है।

"एक बार बस और नाच तू श्यामा। सामान सभी तैयार
कितने ही है असुर, चाहिए कितने तुझको हार
कर-मेखला मंड-मालाओं से बन मन-अभिराम।
एक बार बस और नाच तू श्यामा।"[3]

यही क्रांतिकारिता 'बादल-राग' श्रृंखला की कविताओं में भी दिखलायी देती है उदाहरण के रूप में हम उसकी इन पंक्तियों को प्रस्तुत कर सकते हैं-

"जीर्ण बाहु है, शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर।
ऐ जीवन के पालनहार।।"[4]

जिस समय साहित्य में कोई प्रगतिवाद का नाम भी नहीं जानता था, उस समय 'निराला' ने सर्वहारा वर्ग अर्थात् किसान, मजदूर विधवा व भिखारी आदि पर कविताएँ लिखीं। इस कारण 'निराला' विद्रोही कवि कहलाये। 'निराला' की काव्य संवेदना में उनकी कविता 'भिक्षुक' व 'तोड़ती पत्थर' में हमें समाजवादी विचारधारा का स्पष्ट रूप दिखाई पड़ता है। इस कविता में 'निराला' जी की सहानुभूति एक मजदूर युवती की ओर रही है। ग्रीष्म ऋतु की तपती दोपहरी में वह सड़क पर पत्थर तोड़ रही है। दूसरी ओर विशाल अट्टालिका में लोग चैन की नींद सो रहे हैं। युवती उस अट्टालिका की ओर देखकर निराशा का उच्छ्वास छोड़कर पुनः अपने काम में लग जाती है। इस कविता में पत्थर तोड़ती हुई गरीब स्त्री की हालात पर जिस वातावरण का निर्माण हुआ है, वह समाज के आर्थिक अभाव का ढाँचा प्रस्तुत करता है। श्रम के महत्व में विश्वास की तीव्र आकांक्षा भी प्रस्तुत की गयी है। इसमें अभावों से मुक्ति पाने की इच्छा तथा ऐश्वर्य के प्रति ईर्ष्यालु तितिक्षा भी मौजूद है-

"देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा दिन रात,
देख मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं
एक क्षण के बाद वह काँपी सुहार,
छलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा-
मैं तोड़ती पत्थर"।[5]

कविता की ध्वनि में कर्म की महत्ता के आदर्श को प्रस्तुत किया गया है। मूल तो अर्थ ही है पर समाधान क्रान्तिकारी होना नहीं है। क्रान्ति है काहिली और आलस्य से छुटकारा पाने की। इसी प्रकार 'निराला' की 'भिक्षुक' कविता में हमें सहज मानवीय संवेदना दिखाई पड़ती है। निराला की यह कविता आमतौर पर अपने यथार्थ चित्रण और गहरी सहानुभूति के लिए याद की जाती है लेकिन इसे उस व्यंग्य के लिए भी याद किया जाना चाहिए जिसमें आज

की सभ्यता की आलोचना के बहुत सूत्र समाये हुए है। यह व्यंग्य सबसे ज्यादा इसकी अंतिम पंक्तियों में उभरता हुआ दिखाई देता है-

"वह आता-
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता-
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।"[6]

यह एक तरह से आज की सभ्यता की तीखी और व्यंग्य से भरी हुई आलोचना है। आज भी निराला की यह कविता प्रासंगिक जान पड़ती है। यहाँ कवि ने अपनी सुपरिचित 'दया' इस 'भिक्षुक' को देकर कविता को तो कमजोर नहीं होने दिया है। कहा जाता है कि एक तरह से कवि भिक्षुक के यथार्थ से बाहर रहा है। उसका यह बाहरीपन इस कविता का एक गुण बन जाता है। वही गुण जिसके बारे में टी.एस. डलियट ने कहा था- "There is always saperation between the man who suffers & the artist who creates; & the greater the artist the greater the saperation. (भोगने वाले प्राणी और सृजन करने वाले कलाकार में सदा एक अन्तर रहता है और जितना बड़ा कलाकार होता है उतना ही भारी यह अन्तर होता है।)"7

'तुलसीदास' कविता में निराला द्वारा प्रतिष्ठित ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक अर्थ अधिक स्पष्ट है। भारत के सांस्कृतिक अंधकार की चिन्ता से ही कविता प्रारम्भ होती है, लेकिन इस बर्थ के साथ ही निजी आत्मसाक्षात्कार का अर्थ और भी अधिक स्पष्ट और गहराई से निराला ने इस कविता में पिरोया है। इनकी कविता 'तुलसीदास' में वर्ण-विभाजन के कारण उत्पन्न कठोर सामाजिक यथार्थ का चित्रण देखने को मिलता है। दलितों की सामाजिक दुर्दशा के यथार्थ चित्रण के उदारण के रूप में हम उसके निम्न दो अंशों को प्रस्तुत कर सकते हैं-

"चलते-फिरते पर निस्सहाय,
वे दीन, क्षीण, कंकालकाय।
आशा-केवल जीवनोपय उर-उर में,
रण के क्षुद्र जीवन संबल, पुर-पुर में।।"[8]

'बादल राग' कविता में कवि का मानवतावादी पक्ष उभर कर सामने आता है। इसमें किसानों के दुखों से पसीज कर कवि कहता है-

"ऐ विप्लव के वीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर।
चूस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र ही है आधार।।"[9]

वर्तमान समय में भी कृषकों की दयनीय अवस्था देखने को मिलती है। किस प्रकार एक किसान अपने खून पसीने से फसल उत्पन्न करता है, परन्तु उसे किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आज भी अकाल, सूखा आदि समस्याओं की मार कृषकों पर पड़ रही है। निराला की यह कविता आज भी कृषकों के लिए उतनी ही

प्रासंगिक है जितनी पहले थी। इसी प्रकार निराला की कविता जागों फिर एक बार प्रसिद्ध जागरण गीत है। कई दृष्टियों में विभिन्न वातावरण का चित्रण करके, अतीत की वीरता, शौर्य और दार्शनिकता के सहारे कवि अपने देशवासियों को जगाना चाहता है। निराला ने इस गीत में आशावाद का संचार कर उस पुरूषत्व की पूर्ण अभिव्यंजना की है जिसके निराला स्वयं उपासक हैं-

"तुम हो महान, तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, काम-परकता
ब्रह्म हो तुम,
पद रज भर भी रे नहीं पूरा यह विश्वभार,
जागो फिर एक बार।"[10]

निराला का यह गीत आज भी भारतीयों के मन में एक नई आशा, चेतना व उत्साह का संचार करता है। देश के सांस्कृतिक पतन की ओर जाने को निराला जी ने बड़ी ओजस्विनी भाषा में इंगित किया है। उनका कहना है कि देश के भाग्य कोश को विदेशी शासन के राहु ने ग्रस रखा है। वह चाहते हैं कि किसी भी प्रकार देश का भाग्योदय हो और भारतीय जन-मन आनन्द विभोर हो उठे। 'भारती वन्दना', 'जागो फिर एक बार', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' आदि कविताओं में निराला जी ने देश भक्ति के भाप प्रकट किये हैं। छत्रपति शिवाजी का पत्र कविता में निराला एक नयी चेतना व ओज भारतीयों में जगाने का प्रयास करते हैं जो इन पंक्तियों में दिखाई पड़ता है-

"सोचो तुम,
उठती है नग्न तलवार अब स्वतंत्रता की
कितने ही भावों से
याद दिलाकर दुख दारूण परतन्त्रता का
फूँकती स्वतंत्रता निज मंत्र से जब व्याकुल कान
कौन वह समेरू, जो रेणु-रेणु न हो जाए।"[11]

इसी प्रकार निराला की कविता 'कुकुरमुत्ता' प्रगतिवादी भावनाओं से पूर्ण है। इस कविता में सर्वहारा को कुकुरमुत्ता का और पूँजीपति एवं अधिकारी वर्ग को गुलाब के फूल का प्रतीक माना गया है। इस कविता को पढ़ने के पश्चात् यह मानने पर विवश होना पड़ता है कि गुलाब नहीं कुकुरमुत्ता ही बड़ा है। कुकुरमुत्ता सर्वसामान्य का प्रतिनिधि होने के कारण सर्जक एवं उत्पादनकर्ता है। इसके विपरीत गुलाब शोषक है। शोषकों की संख्या गुलाब के समान अत्यधिक सीमित रही है, जबकि शोषित कुकुरमुत्ता के समान बहुसंख्यक होते हैं। कुकुरमुत्ता एक तरह से निराला का प्रतीक है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुकुरमुत्ता गुलाब को नहीं स्वयं निराला पूँजीपतियों, सेठो, नवाबों और विलासी जनों को ललकार कर कह रहे हैं-

"अबे, सुन बे, गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपीटालिस्ट।।"[12]

इसी प्रकार सरोज स्मृति कवियों प्रथम- प्रबन्धात्मक और महाकाव्यात्मक औदात्य तथा आयाम से परिपूरित

है। दूसरी- इस लम्बी कविता में कवि की अन्तर्वेदना की चीत्कार भी अत्यंत करूण रूप में मुखर होकर उभरी है। तीसरे- साहित्य व्यक्तित्व प्रतिफलन की दृष्टि से सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश का स्वर ध्वनित होता है। अपनी कविता में अपने समकालीन पाठकों, सम्पादकों से अस्वीकृति, कवि की मौलिकता, भाषा और उसके विद्रोही रूप पर तरह-तरह के आक्षेप, आर्थिक विपन्नता, एकाकीपन सभी प्रत्यक्ष व साफ हैं जो इन पंक्तियों से जान पड़ते हैं-

"दुख ही जीवन की कथा रही/क्या कहूँ आज जो नही कही
हो इसी कर्म पर वज्रपात/यदि धर्म, रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य सफल/हो भ्रष्ट शीत के से शतदल"[13]

अपनी रचनात्मकता के विनाश और तर्पण की इच्छा का यह जर्जर आवेश निराला के मन की गहरी यातना का प्रतीक है। इस सम्पूर्ण कवि कर्म से उन्हें क्या मिला? यह कविता के रूप में लिखा गया आत्म चरित्र है। इस कविता में जो व्यंग्य है वे उनके निजत्व के ऊपर भी है और आज की सामाजिक विषमताओं, संकीर्णताओं पर अत्याधिक प्रासंगिक जान पड़ते हैं।

'निराला' का समस्त काव्य मानवतावादी धर्म व्याख्या, स्थापना और विकास कर जन-जन के कल्याण का मार्ग खोलने की अमर गाथा है। वास्तव में इनके काव्य में प्रगतिशीलता के अन्तर्गत मानवता, सामाजिकता व राष्ट्रीयता का प्रखर रूप देखने को मिलता है। 'निराला' ने अपनी काव्य शैली में ही क्रांति नहीं की, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति भी खुला विद्रोह किया। इन्होंने काव्यगत संकीर्ण छन्दों की छोटी राह का परित्याग तो किया ही साथ ही सड़े-गले सामाजिक बंधनों की भी अवहेलना की। इस प्रकार 'निराला' की काव्य संवेदना में हमें प्रगतिवाद के सभी पुटों का समावेश मिलता है जो इनके काव्य को प्रगतिशीलता की ओगर अग्रसर करता है। 'निराला' का सम्पूर्ण काव्य मानवीयता, राष्ट्रीयता व समाज का काव्य है जो आज भी समाज की प्रगति व सुधार के मार्ग को प्रशस्त कर रहा है।

सन्दर्भ :

1. परिमल- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ. 103, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. निराला रचनावली भाग 1- नन्दकिशोर नवल, पृष्ठ 40, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. निराला की साहित्य साधना भाग 1- रामविलास शर्मा, पृष्ठ 84 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. परिमल- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ 136, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. भूमिका, शेखर : एक जीवनी- अज्ञेय, पृष्ठ 37, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. निराला रचनावली भाग 1- नन्द किशोर नवल, पृष्ठ 76-77, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. निराला की साहित्य साधना भाग 2- रामविलास शर्मा, पृष्ठ,झ राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. निराला रचनावली भाग 1- नन्द किशोर नवल, पृष्ठ 287, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. परिमल- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पृष्ठ 139, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. परिमल- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पृष्ठ 148 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. निराला रचनावली भाग 2- नन्दकिशोर नवल, पृष्ठ 171, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद।
12. क्रांतिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह, पृष्ठ 99, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद।
13. निराला आत्महंता आस्था- दूधनाथ सिंह पृष्ठ 132, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

—x—